Vol. 7, Issue: 2, February: 2019 (IJRSML) ISSN: 2321 - 2853

दलित साहित्यके उदभव और विकासकी सैद्धांतिकी

धर्मवीर यादव
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

मानव प्रगति और सभ्यता के इतिहास में कुछ चालाक और वर्चस्वशाली मनुष्यों द्वारा, बहुसंख्यक 'सरल और भोले ' मनुष्यों के 'मन-मस्तिष्क' को गुलाम बनाकर उन्हें सभी मानवीय मूल्यों और अधिकारों से वंचित कर दिया गया | उन्हें 'लिपि और शिक्षा', 'ज्ञान और सम्मान' को प्राप्त करने का अधिकार कभी-भी नहीं दियागया | और उस 'गुलाम मन-मस्तिष्क' में यह गौरव भाव भार और गढ़ा गया कि 'पढ़ना-लिखना', 'ज्ञान' प्राप्त करना तुम्हारे लिए अपमान जनक है | जो उनके दिल-दिमाग में घर-कर जाने और कुंडलीमार कर बैठ जाने जैसा था | 'लिपि और ज्ञान', मानवीय अधिकार और सम्मान को प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त सिर्फ 'कुछ' ही लोगों को है, तुम्हारी यह दुर्गति ही सद् गति है | इसीमें तुम्हारी मुक्ति है | तुम्हें सिर्फ श्रम करते रहना है —तुम्हें सोचना-समझना मना है क्योंकि यह विधान मनुष्य कृत नहीं, ईश्वर कृत हैं | तुम्हें ईश्वर ने यहाँ 'श्रम' करते रहने के लिए भेजा है | इसलिए तुम्हारी 'ईश्वर' कृत यही गति; सदगति है |

मानव-सभ्यता की प्रगति और 'देश-काल' की जरुरत के अनुसार गुलाम मन-मस्तिष्क ने अपने न सोचने पर अर्थात्—तुम्हें श्रम करते रहना है,तुम्हारी यही नियति सही है, तुम्हारी गति श्रेष्ठ है | इस पर तुम गर्व करो, क्योंकि यह 'ईश्वर' कृत है | इस 'न सोचने' अर्थात् ईश्वर पर पहली बार 'सरल और भोले-भले' मनुष्यों ने अपने मन-मस्तिष्क में 'शक'(suspense) किया, क्योंकि 'चालाक और वर्चस्वशाली' मनुष्यों ने ईश्वर जैसा अद्भुत रहस्य खड़ा कर, 'सरल और भोले मनुष्यों' पर —नृशंस, हिंसक और बर्बरतापूर्ण व्यवहार और वार किया| अपने प्रभुत्व और वर्चस्व को बनाये रखने के लिए | अपने दिल-दिमाग में दबाये — नृशंस, हिंसक, बर्बर, शोषण उत्पीड़न, उपेक्षा, दलन और दमन की अभिव्यक्ति'ईश्वर' के समक्ष सीधे सरल मनुष्य करते हैं, और उस ईश्वर से यह प्रार्थना करता है कि हमारी इस दुर्दशा, इस दुर्गति पर दया और करुणा करो | इन सरल और भोले-भाले मनुष्यों को ईश्वर से किसी भी प्रकार की मानवीय राहत न मिलने के कारण 'न-सोचने' अर्थात् ईश्वर पर लोगों ने पहली बार बहुत गहराई 'शक' किया | और उसीके साथ इस दुर्गति से मुक्ति के लिए 'सोचना' शुरू किया | मनुष्य अब ईश्वर जैसे रहस्य को तर्क के आधार पर तोड़ना-फोड़ना शुरू किया | अपनी इस तर्क बुद्धि से मन में उठने वाले विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए इन मनुष्यों ने हर बार चुपके से 'लिपि' को सिखने की कोशिश की | लेकिन जब-जब 'सरल ' और 'भोले-भले मनुष्यों' ने अपने दुःख, दर्द, दलन

और दमन को अभिव्यक्त करने के लिये 'लिपि' को सिखने की कोशिश की तब-तब उसके 'अंगूठे को काटा' गया | जिसका मजबूत उदहारण है –'एकलव्य' | इसलिए,इसदुःख,दर्द और पीड़ा को अभिव्यक्त करने के लिए श्रमशील —दलित, आदिवासी और स्त्री समाज ने 'गीत-संगीत' का इजाद किया, और मौखिक अभियक्ति से अपने मनोभावों को पहले-पहल व्यक्त किया | बाद में चलकर ये मौखिक अभिव्यक्ति लोक-भाषा के रूप में गढ़ी जाती है | शायद इसी कारण रॉल फ़ॉक्स अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'उपन्यास और लोक जीवन' में लिखते हैं, "अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा जखीरा हर जाति की लोक-भाषा में मौजूद है |" [1] मनुष्यों के इस मनमुख की मौखिक अभिव्यक्ति का सीधा संबोधन "ईश्वर" को था | पहली बार दुखित और दमित मनुष्यों ने 'ईश्वर के समक्ष', 'प्रतिरोध' दर्ज किया | और उसके 'भाग्य-विधाता अर्थात् मुक्ति दाता' होने पर 'प्रश्न चिह्न' खड़ा किया |

ईश्वर के समक्ष प्रतिरोध और उसके अस्तित्व पर 'शक' मानव सभ्यता की प्रगति में उसे न्याय न मिलने के कारण पहली बार लोगों के मन में उठा | उसीके साथ उसने 'मानवीय-मूल्य' बोध अर्थात् 'हमभी मनुष्य हैं|' के भाव-बोध को लेकर 'चिंतन' शुरू किया | यह 'चिंतन' उसके नम-मस्तिष्क में लंबे समय तक चलता रहा | इस चिंतन ने उसे 'तर्क-शील' बना दिया | मानव प्रगति के विभिन्न युगों में होते हुए, मनुष्य ऐसे 'देश-काल' में प्रवेश किया जहाँ —किसी भी तथ्य, विचार, निर्मिति और अवधारणा को ज्ञान, विज्ञान एवं तार्किकता के अधार पर स्वीकारने और अस्वीकारने का जनतंत्रीय अधिकार मिला | जिसे 'आधुनिकता' अर्थात् आधुनिक 'देश-काल' कहा गया | जहाँ जनतंत्रीय चिंतन की निर्मिति रूसो के मानवीय-मूल्य के चिंतन —"समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व ' से शुरू होती है | रूसो, मनुष्य की हर प्रकार की गुलामी से स्वतंत्रता चाहते हैं, वे लिखतें हैं—मनुष्य स्वतन्त्र जन्म लेता है लेकिन वह सर्वत्र जंजीरों में बंधा होता है | ' इसी गुलामी को तोड़ने के लिए रूसो ने समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के मानव-मूल्य पर आधारित स्वतंत्र समाज की स्थापना का लक्ष्य आधुनिक मनुष्य को दिया | रूसो के इस मानव-मुक्ति के उद् घोष ने मानव को रेडिकल चेंज (radical change) के लिए प्रेरित किया | इसी मानव-मूल्य को प्राप्त करने लिए दुनियाँ में क्रांतियाँ हुईं | जिससे वर्चस्वशाली —एकतंत्रीय, राजनीतिक, आर्थिक, धर्मिक, औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी प्रणालियों को तोड़ा, और उसका अंत किया गया | इन सबके समानांतर 'जनतंत्र' की स्थापना होती है | इस के साथ ही 'जनतंत्रीय युग' प्रारंभ होता है | और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक निर्मितियों का 'जनतंत्रीकरण' होता है | जनतंत्रीय युग ने सदा-सदा से सभी मानवीय अधिकारों से वंचित, मानव समाज को सभी मानवीय अधिकार दिया |

जनतंत्र ने दुनियाँ में 'वर्ग' और 'वर्ण' सेगुलाम मनुष्यों को 'लिपि' और 'ज्ञान' को प्राप्त करने का अधिकार दिया, और उनके 'मन-मस्तिष्क' की गुलामीं की बेड़ियों को तोड़ता है | स्वतंत्र और जनतंत्रीय चेतना संपन्न 'मन-मस्तिष्क' में हर तरह की 'समानता' और 'हम मनुष्य हैं' जैसा, भाव-

विचार पैदा करता है |अब वे 'लिपि' को सिखने के पूरे अधिकारी होते हैं | 'लिपि' को सीखने के साथ ही 'गुलामी से स्वतन्त्र मन-मस्तिष्क' पहले-पहल नृशंस, हिंसक, बर्बर —शोषण, उत्पीड़न, उपेक्षा, गुलामी के दमन और दलन के आँसुओं की आत्म कथात्मक अभिव्यक्ति शुरू करता है | अमेरिका के ब्लैक लेखक फ्रेडरिक डगलस, जिन्होंने एक से अधिक आत्मकथाएँ लिखीं या फिर एक प्रभावशाली ब्लैक लेखक 'दुब्बैया' को देखें इन्होंने तो अपनी आत्मकथा "सेल्फ ऑफ अ ब्लैक फोक" की शुरूआत ही दुखद वाक्य से की है—"यहाँ दफ़न पड़ें हैं वे तत्व जिन्हें धीरज से पढ़कर पता लगेगा एक काले आदमी की रूह क्या होती है |" [2]एशिया में जापान, एक टाइम एंड स्पेस तक जातीय भेद-भाव और स्पृश्यता का देश और समाज रहा | जिसकी शिकार वहाँ की 'एता जाति' रही | इसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति शिमकाजी तोसोन के 'हकाई' उपन्यास में होती है | 'एता' जाति जापानी समाज की "मोची जाति" है जो चमड़े का काम करती है | भारत में "एता" जाति को "मोची" कहते हैं | मोची ; जो जाति चमड़े का काम करती है |'चमड़े' का काम करने के कारण वर्ण और जाति आधारित इस देश ने इस जाति का नामांतरण 'चमार' के रूप में किया |चमार अर्थात् चर्मकार —जो चमड़े का काम करता है | यह उस देश काल की बात है जब जातियां पेशे के अनुसार बनती थीं जो जातियाँ जैसा पेशा करती थी वही उनकी जाति और पहचान बन जाती थी |

जाति और वर्ण पर आधारित 'सुपर शोषण' तंत्र भारत, की एकतंत्रीय गुरु प्रणाली पर आधारित हिन्दू सामाजिक संरचना की निर्मिति को तोड़ते हुए 'जनतंत्र' की स्थापना होती है | इस स्थापना के साथ ही "लिपि" और "ज्ञान" का जनतंत्रीकरण होता है | इसीके साथ इस देश की सदियों से उपेक्षित, उत्पीड़ित, शोषित, प्रताड़ित सभी मानवीय अधिकारों से वंचित, दलन और दमन के शिकार—दलित, आदिवासी, स्त्रियाँ और लोग अपने दुःख, दर्द और आह की कराह को लिपि बद्ध करते हुए आत्म कथात्मक अभिव्यक्ति देते हैं | जो समाज ज्ञान की कलम को पहले पहल अपनी कोमल अंगुलियों में पकड़ा हैं वह सबसे पहले अपने दुःख दर्द को ही लिखता है | जो बहुत हद तक सही भी है | इसी कारण दलित साहित्य में पहले पहल आत्म कथाएं मजबूती से पैर जमाते हुए आती हैं ; साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा | यही कारण है कि इस समाज के शोषण, उत्पीड़न, दुःख, दर्द और दमन की आत्म कथात्मक अभिव्यक्ति देने वाली आत्म कथाओं की शुरुआत —जोहड़ी....,चुहणों का गाँव...,तब मेरी उम्र...,जब भी मैं अकेला पड़ता...,रखैल की संतान...,मैं कैसे बना...,मुर्खता मेरी जन्म जात विरासत थी...,आदि पीड़ा दायक जीवन अनुभवों से शुरू होती हैं | यह विभिन्न प्रकार के शोषण से मानवीय मुक्ति की आकांक्षा है | जो दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य और स्त्री विमर्श के रूप में अभियक्त हो रही है |

आधुनिक जनतंत्रीय अधिकार, अस्मिता और चेतना संपन्न दलित, आदिवासी और स्त्री समाज, अब अपनी साहित्यिक अभिव्यक्ति लगातार कर रहा है | सबसे महत्त्वपुर्ण बात कि अब यह साहित्य इस समाज की सामाजिक मुक्ति के आन्दोलन का साहित्य बन कर अभिव्यक्त हो रहा है | और यही इस साहित्य का लक्ष्य और उद्देश्य है | इस सामाजिक मुक्ति में दलित साहित्य उस चिंतन धारा को अपनी वैचारिकी का आधार बनती है जो मानवीय मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाली चिंतन धारा रही है जिसके हीरो 'बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर' हैं | इसी वैचारिकी की चिंतन परंपर से दलित समाज प्रेरणा लेकर दलित चेतना संपन्न और दलित समाज की अस्मिता की पहचान करते हुए दलित

साहित्य में आत्म कथात्मक अभिव्यक्ति करता है | जिसकी पहली साहित्यिक अभिव्यक्ति मराठी साहित्य में होती है |

तार्किक और मजबूत अंग्रेजी भाषा की शिक्षा से ; यूरोप ज्ञान-विज्ञान, मानव-मूल्य — समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के संदेश और समता मूलक समाज के जनतंत्रीय प्रणाली से ज्योतिबा फुले और डॉ. अम्बेडकर ने जो जीवन अधिकार और मानव मूल्य की चेतना सृजित किया, जनतंत्र और समतायुक्त समाज जो – 'एक मूल्य, एक मनुष्य' –की अवधारण पर आधारित थी, जिससे मनुष्य होने अर्थात् सभी मानव मूल्य का अधिकारी होने की वैचारिकी को उन्होंने वहाँ से सा-धिकार प्राप्त किया | इसी चेतना और अधिकार का इस गुलाम देश की जनता के मन-मस्तिष्क में रोपित किया, जिसका दलित, आदिवासी और स्त्री समाज कभी भी अधिकारी नहीं रहा | हर समय उसे मनुष्य अस्तित्व की चेतना और सभी मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया | फूले और अम्बेडकर ने इस "चेतना और अधिकार" को दलितों और आदिवासियों के अन्दर जगाया | उनमें सजग, सचेत मनुष्य होने का भाव पैदा किया | जिससे उनमें — "हम भी मनुष्य हैं हमें सभी मानवीय अधिकार मिलाने चाहिए |" का भाव और विचार उनके अन्दर पैदा हुआ | इसी विचार के साथ उस समाज के अन्दर अपने अस्तित्व को लेकर यह प्रश्न खड़ा होता है, हम कौन हैं ? हमारा मूल्य क्या है ? हमारा अस्मिता क्या है ? हमारी सामाजिक पहचान क्या है ? अन्य सभी मानवीय-मूल्य बोध की पहचान करते हैं | इस अस्मिता और अधिकार की चेतना की अखिल भारतीय दलित समाज में पहली अभियक्ति — साहित्यिक और आन्दोलन के स्तर पर होती है | जो दलितों के मन-मस्तिष्क और जीवन को बहुत गहरे तक प्रभावित करती है | जिसकी जमीन बाबा साहब अम्बेडकर ने बनाई थी | रमणिका गुप्ता लिखती हैं, "मराठी दलित साहित्य महात्मा फूले की समृद्ध सोच के परिप्रेक्ष में,डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा के प्रभाव में सीधे आन्दोलन के गर्भ से उत्पन्न हुआ और ग्रामीण स्तर तक भी लोक-साहित्य, लोक-कला, नाटक, जलसा, आदि के जरिये दलित चेतना के विकास का एक कारगर हथियार बना |"[3]

दलित समाज के चेतना, अधिकार और अस्मिता की पहली अभिव्यक्ति मराठी साहित्य में उस देश-काल में चल रहे मराठी दलित आन्दोलन के साथ विकसित होती है | जब यह साहित्य चेतना, अस्मिता और अधिकार सम्पन्न होकर बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के मानव-मुक्ति के विचार — 'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो' के विचार के साथ, 'दलित साहित्य' दलितों के मन-मस्तिष्क में आत्म-सम्मान और स्वाभिमान जगाकर 'रेडिकल' परिवर्तन और संघर्ष के लिए प्रेरित करती है | दलित समाज और साहित्य 'दलित पैंथर' संगठन के माध्यम से आन्दोलन करता है | यह एक प्रतिबद्ध दलित आन्दोलनकारी संगठन था | जो सामजिक और राजीनीतिक मंच को संभालता है | दलितों की मुक्ति के लिए फूले-अम्बेडकर ने 'विचार आन्दोलन' चलाया था | मराठी में 'सोसियो पॉलिटिक्स' मोमेंट का गहर प्रभाव पड़ा | फूले अम्बेडकर के मोमेंट पर शरणकुमार लिंबाले लिखते हैं कि "इस मोमेंट(आन्दोलन) ने मुझको ही नहीं महाराष्ट्र के तमाम लोगों को स्वतन्त्र किया यह एक जन आन्दोलन है जो जाति-व्यवस्था के खिलाफ छेड़ा गया है | इस आन्दोलन से जुड़े कार्य-कर्ता जब लेखक बने, तो उन्होंने फुले-अम्बेडकर के विचारों को जन सामान्य तक पहूँचाया |"[4] "वह (दलित साहित्य)आन्दोलन से जुड़ा साहित्य है | जो अपनी अस्मिता और पहचान की तलाश में है |"[5] इसी

चेतना संम्पन्नता के साथ मराठी दलित चेतना अभिव्यक्त होती है | लेकिन संगठित वैचारिक चेतना की अभिव्यक्ति स्वतंत्रता के बाद होती है|

सन् 1949 में दलित साहित्य के लेखकों ने अप्पा साहेब रनपिसे की पहल पर 'दलित लेखक संघ' की स्थापना की | 2 अक्तूबर 1950 को पिराजी टप्पल यादव ने यह सूचना निर्गत की, कि 'दलित सेवक साहित्य संघ' का नाम बदल कर, अब 'दलित साहित्य संघ' रख दिया गया है | इस सूचना के आधार पर सन् 1950 में 'दलित सेवक साहित्य संघ', 'दलित साहित्य संघ' के रूप में स्थापित हो गया है | पहली बार "दलित साहित्य शब्द का प्रयोग सान 1954"[6]में हुआ |14 अक्टूबर1956 को बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने दलितों के साथ धर्मान्तरण किया | 'महाराष्ट्र साहित्य संघ' ने 2 मार्च 1958 को मरबाग, दादर बम्बई में बंगाली हाई स्कूल के हाल में दलित लेखकों का पहला साहित्यिक सम्मलेन सपन्न कराया | जिसके अंतर्गत ही 'दलित वर्गातील वंडमचाया दृष्टिकोण काया असावा'(दलित साहित्य की दृष्टि क्या होनी चाहिये ?) इस विषय पर एक निबंध प्रतियोगिता का आयोजन भी हुआ था | यहाँ बात ध्यान देने योग्य है कि इसे 'बौद्ध साहित्य' के बजाय 'दलित साहित्य' के नाम से संबोधित किया गया |" [7]अब दलित साहित्य शब्द, साहित्य में दलितों की अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा मंच और समाज में अन्दोलन का प्रतिनिधित्व कर्ता मंच बना | आगे चल कर 11मार्च,1961 को 'दलित साहित्य संघ' का नाम परिवर्तित करके 'महाराष्ट्र बौद्ध साहित्य परिषद्' रखा गया | इस प्रकार 2 मार्च 1958 से 11 मार्च 1961 के बीच में 'दलित साहित्य' को लेकर चर्चा, परिचर्चा और 'दलित' शब्द पर विचार होता रहा |

'अस्मिताओं के सह-अस्तित्व' में घनश्याम शाह लिखते हैं कि "मराठी साहित्य में दलित साहित्य आन्दोलन 1960 से शुरू होता है |[8]सन् 1967 में दलित साहित्य आन्दोलन पर विधिवत चर्चा शुरु हो गई | "दलित साहित्य वास्तव में आन्दोलन का एक हिस्सा है |" [9]मार्क्सवाद के सन्दर्भ में ऐंगल्स ने 'कम्युनिष्ट मेनूफेस्टो' में लिखा है, "मार्क्सवाद कोई डगम नहीं है यह कर्म का सिद्धांत है |" [10]इसी तरह दलित साहित्य विचारों का डगम नहीं है यह आन्दोलन का साहित्य है | जिसकी अभिव्यक्ति के लिए दलित "दलित पैंथर" का आन्दोलन करी मंच बना | जिस संगठन की स्थापना 9 जुलाई 1972 में बम्बई में हुई | 'दलित पैंथर' नाम अमेरिका के "ब्लैक पैंथर" की तर्ज पर अगस्त 1972 में राजा ढाले ने 'काला स्वातंत्रय दिवस' शीर्षक लेख में किया | इसके साथ 'दलित' शब्द को पूरा प्रचार मिला | यह एक लड़ाकू और विद्रोही संगठन था | सन् 1973 में आन्दोलनकारी संगठन 'दलित पैंथर' ने आपने 'घोषणा पत्र' को विस्तार किया और लिखा —"राजसत्ता, धर्म, सम्पति और सामाजिक हैसियत के आधार पर होने वाली सभी नाइन्सफियों के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रतिबद्ध अनुसूचित जातियाँ, जन-जातियाँ दलित मानी जायेंगी | बाद में इसमें महिलाओं, अफ़्रीकी, अमेरिकी अश्वेतों, सताए अल्पसंख्यकों और पिछ्ड़ों को भी जोड़ा गया |" [11] यह संगठन दलितों का सामाजिक और राजनीतिक मंच समहालता राहा | इस आन्दोलन की ऊष्मा को दलित साहित्य में अभिव्यक्त किया गया | इस

तरह आन्दोलन और साहित्य चलता राहा | इस संचित जनसामान्य की अभिव्यक्ति पर 1976 ई. में 'नागपुर' में "दलित साहित्य सम्मेलन" हुआ | सन् 1978 में दलित पैंथर और सवर्णों के बिच औरंगाबाद में दंगा हुए |

हिंदी पट्टी के दलित समाज पर मराठी दलितों के इस साहित्यिक-सामाजिक आन्दोलन (पुर्व से ही, बाबा साहब डॉ. अम्बेडर के विचारों, सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक आन्दोलनों) का असर पड़ राहा था | जिससे प्रेरित होकर सन् 1975 में हिंदी पत्रिका 'सारिका' के तत्वकालीन संपादक कमलेश्वर ने इसके अर्थात् दो 'दलित विशेषांक' निकाले | यद्यपिकी हिंदी में इसके पूर्व 1914 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका में दलित हीरा डोम की 'अछूत की शिकायत' कविता में दलित समाज की दबी साहित्यिक अभिव्यक्ति हो चुकी थी | और 19वीं सदी में उत्तर प्रदेश में बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर से कुछ पहले स्वामी अछुतानंद 'हरिहर' ने पुरे उत्तर भारत में व्यापक 'आदि हिन्दू आन्दोलन' चलाया था| वे 'हरिहर' उपनाम से कवितायें लिख रहे थे | दलितों पर हो रहे अत्याचारों पर केन्द्रित पत्र भी निकालते थे | अछूतानन्द के प्रभाव से 'केवलानंद' ने दलित प्रतिरोध की प्रशिद्ध कविता लिखी —

मनुजी तैने वर्ण बना दिए चार,
जा दिन तूने वर्ण बनाए, न्यारे रंग बनाए क्यों न ?
गोरे ब्राह्मण, लाल क्षत्री, बनिए पित बनाए क्यों न ?
कैसे हो पहचान पोप की, दो अक्षर डलवाए क्यों न ?
पाँच तत्त्व तो सब में दिखें, ज्यादा तत्त्व लगाए क्यों न ?
वह सर्वज्ञ सर्व में व्यापक, उससे जुदा बनाये क्यों न ?
पाँच तत्त्व गुण तिन बराबर, बढ़कर तत्त्व लगाए क्यों न ?
एक चुक बड भारी पड़ गई, न्यारा मुल्क बसाए क्यों न ?
लोहे के बर्तन पर पानी, कंचन को दियो डार !
मनुजी तैने वर्ण बनाए चार !

यह प्रतिरोध की अभिव्यक्ति, राजनैतिक बल न पाने से सिमट कर रह गई |

सन् 1974-75 का राजनीतिक 'देश-काल' परिवर्तनकारी रहा | इसी समय अर्थात् 1974-75 में जे०पी०(जयप्रकाश नारायण) ने राजनैतिक परिवर्तनकारी आन्दोलन चलाया था | जिससे दलित साहित्य और समाज भी प्रभावित हुआ था | सन् 1981 में कांशी राम ने 'डी.एस.- 4' और फिर 1984 में "बहुजन समाज पार्टी" की स्थापना की | 1990-91 में 'मंडल-कमीशन' ने कमंडल को जर्जर करते हुए, पिछड़ों और दलितों के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन में 'रेडिकल' परिवर्तन किया | एक सबसे महत्त्वपुर्ण बात है कि बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर 1927-28 ई. में हिंदी क्षेत्र में लगातार सभाएँ कर रहे थे | इन सभी राजनैतिक-सामाजिक आंदोलनों का हिंदी दलित समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा |

हिन्दी दलित साहित्य की जमीन पर मराठी दलित साहित्य का बहुत गहर प्रभाव पड़ता है | हिंदी दलित साहित्य की अचेतन जमीन पर मराठी दलित साहित्य की चेतना के पौध को लगा कर पुष्पित और पल्लवित किया जाता है | **योद्धागुरु नामवर सिंह लिखते हैं, "मूल पौध तो मराठी का है अब हिंदी में इसकी कलम लगाई जा रही है |"** जो सही भी जान पड़ता है | मराठी दलित साहित्य 1960 ई. से अपनी साहित्यिक अभिव्यक्ति मजबूती से करना शुरू कर देता है | जबकि हिंदी दलित साहित्य की पहली साहित्यिक अभिव्यक्ति का अंकुरण 1980 ई. में होती है | इसीके साथ दलित लेखकों का साहित्यिक लेखन अस्तित्व में आता है | दलित और आदिवासी चिन्तक रमणिका गुप्ता हिंदी दलित साहित्य की बनती शक्ल पर लिखती हैं, "अस्सी के दशक के बाद ही दलित साहित्य एक नई शक्ल लेकर अभिजात्य सवर्ण साहित्यकारों के मंच को चुनौती देने लगा |" [12] सन् 1981 में "दलित साहित्य मंच" नाम से राजपाल सिंह और लक्ष्मी नारायण सुधाकर ने एक संस्था —दिल्ली में स्थापित किया| इस संस्था का उपयोग प्रतिबद्ध बुद्धिजीवियों, साहित्यकरों, नौकरशाहों, और कुछ नेताओं ने दलितों में दलित चेतना जगाने और उनकी अस्मिता की पहचान के लिए किया | सन् 1981 में स्थापित 'दलित साहित्य मंच', दलितों की साहित्यिक गतीविधियों को संचालित करता और दलित साहित्यकरों का मंच बनता है | इस मंच से कुछ साहित्यकरों ने पत्रिकाएं भी निकालीं | अस्सी के दशक में भारतीय दलित साहित्य अकादमी, डॉ. सोहनपाल सुअनाक्षर के नेतृत्व में हर साल सम्मलेन करने का निर्णय लेती है | यह सिलसिला स्टेप बाई स्टेप राज्यों तक जाता है | यह अकादमी प्रत्येक वर्ष दलित लेखकों और हजारों की संख्या में 'दलित चेतना' समर्थकों एवं गैर दलितों को एक साथ, एक मंच पर जुटाने का काम करती है | "इन्होंने डॉ. अम्बेडकर के नाम से फैलोशिप और राष्ट्रीय अवार्ड आदि देने शुरू किए जिससे 'दलित-अस्मिता' के निर्माण और विकास को बल मिला |"[13]

सन् 1990 में 'सेंटर फॉर अल्टरनेटिव दलित मिडिया' अस्तित्व में आई | जिसकी स्थापना दिल्ली में हुई | इस सेंटर ने दलित साहित्य के प्रचार-प्रसार तथा 'अभिमुक नायक' नाम का अखबार प्रकाशित करना शुरू किया | 'अखिल भारतीय हिंदी दलित साहित्य' का सम्मलेन, दलित साहित्य प्रकाशन संस्थान के सौजन्य से 22-23 जुलाई 1995 में दलित चेतना और दलित अस्मिता पर विचार-विमर्श के बाद संपन्न हुआ | इस सम्मलेन का केन्द्रीय विषय और उद्देश्य था –'दलित साहित्य सृजन को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना', पत्र-पत्रिकाओं में दलित लेखकों को बतौर लेखक प्रतिनिधित्व देना तथा दलित साहित्य शोधकों व प्रकाशकों को 75% सरकारी सहायता प्राप्त कराना|' आगे चल कर डॉ.चंद्रभान ने 'दलित शिक्षा आन्दोलन'की स्थापना की | यह संस्था दलितों के शिक्षा प्रतिमानो में अवरोधों और प्रयासों पर शोध करती करती थी | ब्रिटिश काल से अज तक की 'शिक्षा' को अपना अध्ययन क्षेत्र बनाया | डॉ. कुसुम वियोगी ने "दलित लेखक संघ" स्थापित किया जिसका लक्ष्य था —दलित साहित्य पर गोष्ठियों, साहित्यिक चर्चा और उस पर उसी दिशा में पुस्तकें प्रकाशित करना | डॉ.श्यौराज सिंह 'बेचैन' की अध्यक्षता में 'दलित राईटर्स फोरम' गठित किया | 'दलित राईटर्स फोरम' का लक्ष्य था—पत्रिकाओं में दलितों की भागीदारी का अभियान चलाना | जिसके लिए माध्यम चुना गया—गोष्ठियों एवं सेमिनारों को | साथ ही दलित साहित्य की समीक्षा एवं दलित एजेंडे पर विचार-विमर्श किया जाता था |

'फूले अम्बेडकरवादी लेखक संघ' का गठन डॉ. विमल कीर्ति ने नागपुर में किया | इस संघ ने प्रत्येक वर्ष 'बाबा साहब के दीक्षा दिवस' पर हर वर्ष 'हिंदी दलित लेखकों' का सम्मलेन बुलाने का ऐतिहासिक कार्यक्रम शुरू किया | इस सम्मेलन का महत्त्व इस बात में रहा कि —इसमें दलित साहित्य पर गंभीर चर्चा होनी प्रारंभ हो गई जिससे दलित लेखकों को प्रेरणा और दिशा मिली | इस दशा और दिशा ने हिंदी दलित लेखकों को समृद्ध किया | दलित साहित्य अपनी प्रगतिशीलता जनतांत्रिकता का परिचय देते हुए, स्त्रियों को समान भागीदरी देता है जिसका उदहारण है —सुश्री कुमुद पांवड़े ने 'प्रोग्रेसिव विमेन ऑर्गेनाईजेशन नागपुर' के तत्वावधान में 2 अक्टूबर, 1995 में 'दलित महिला लेखिकाओं' का प्रथम साहित्यिक सम्मलेन आयोजित किया | हिंदी दलित महिलाओं को एक मंच पर लाने के लिए नागपुर में ही 'दलित लेखिका संघ' की योजन बनी | 3 जनवरी 1996को रजनी तिलक की पहल पर 'दलित लेखक संघ' का प्रथम सम्मलेन हुआ |

'अम्बेडकर मिशन' का गठन बुद्धशरण हंस ने बिहार में किया | इस मिशन ने दलित साहित्यकारों को एक मंच पर एकत्रित किया | "इसी प्रकार उज्जैन में अवंतिका प्रसाद 'मरमट' ने मध्य प्रदेश दलित साहित्य अकादमी तथा पुरुषोत्म सत्य प्रेमी ने 'डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय अस्मितादर्श साहित्य अकादमी' नाम से संस्थान कायम किया | और बाद में भारतीय दलित साहित्य अकादमी की मध्य प्रदेश शाखा का गठन हुआ | हीरालाल पिप्पल तथा सुश्री प्रभावीसे ने अखिल भारती अनुसूचित जाति परिषद् का गठन किया | इन संस्थानों द्वारा प्रतिवर्ष साहित्यकारों को जुटाने के आयोजन शुरू किये गये | अवंतिका प्रसाद 'मरमत' ने 'पूर्वदेवा' और प्रभावीसे ने 'परिषद् संदेश' पत्रिकायें प्रकाशित करनी शुरू किया, अपने संस्थान की ओर से | बिहार में 'रमणिका फाउंडेशन' ने हजारीबाग में 1998ई. में पटना में अवर्ण साहित्यकारों की एक संस्था गठित की गई | इस प्रकार हिंदी पट्टी के लगभग हर राज्य में कई संस्थाएं खड़ी की गईं, जो दलित साहित्यकरों को मंच पर लाने लगीं |अब वे भारतीय दलित साहित्यकारों को जुटाने और उन्हें सम्मिलित कर प्रोत्साहित करने लगी |"[14]

अखिल भारतीय स्तर पर दलित साहित्य लेखक सम्मेलन, किसी गैर दलित संस्थान में पहली बार 1997 ई. में 'रमणिका फाउंडेसन' और 'विनोवा भावे विश्वविद्यालय' द्वारा हजारीबाग़ में आयोजित हुआ | जिसमें 'दलित साहित्य की अवधारण', 'दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र', 'दलित साहित्य को पाठ्यक्रम में शामिल करने' और 'हिंदी महिला लेखिकाओं द्वारा आदिवासी संस्कृति पर लिखे गए उपन्यास' आदि विषयों पर दो दिवसी दलित –गैर दलित साहित्यकारों का साहित्यिक मुद्दों पर सम्मेलन हुआ |

"इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ एडवांस स्टडीज, राष्ट्रपति निवास, शिमला में 'ब्लैक और दलित लेखन : कुछ विचार और प्रवृतियाँ' विषय पर डॉ. मृणाल, डॉ. चमन लाल और डॉ. हरीश नारंग ने एक सेमीनार 14-15 अक्टूबर 1997 को आयोजित किया और साहित्य में दलित धारा के अस्तित्व को स्वीकृति दी| इसमें लगातार चार दिनों तक एक गंभीर बहस चली जिसमें, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनायड, आन्ध्र प्रदेश, हिमांचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, दिल्ली, राजस्थान, गुजरात, आदि

अखिल भारतीय स्तर के नमी-गिरामी, दलित- गैर दलित, हिंदी-अहिंदी भाषी साहित्यकारों ने शिरकत की |"[15] 7-8 जनवरी 1998 में 'दलित और नई शिक्षा प्रणाली' विषय पर दिल्ली में 'इंडियन सोशल इंस्टीच्युट' ने अखिल भारतीय स्तर पर बहस आयोजित करवाई | साथ में एक दलित एजेंडा भी तैयार करवाया | इसके बाद तो जलेश, जसम, और प्रगतिशील लेखक संघ और सभी साहित्यिक अभिव्यक्ति मंचों ने दलित साहित्य और पुस्तकों पर चर्चा परिचर्चा और गोष्टियाँ करने लगे | पत्र-पत्रिकाओं में "हंस" जिसके संपादक राजेंद्र यादव, तत्काल से निवर्तमान तक हैं और 'युद्धरत आम आदमी', जिसकी संपादिका रमणिका गुप्ता हैं, इन पत्रिकाओं ने दलित साहित्य लेखन को मजबूत और विशेष मंच दिया |

आधुनिक देश काल दलितों और दलित साहित्य की मुक्ति का काल रहा है | इस देश काल में दलित अधिकार के साथ विरोध की चेतना और अपनी अस्मित की पहचान के साथ मुक्ति की अभिव्यक्त करता है | जिसे कंवल भारती 'दलित साहित्य का मुक्ति काल' कहते हैं | जो सच भी है | इसी काल में दलित साहित्य अपनी वैचारिकी, अस्मिता और आधुनिकता संपन्न चेतना द्वारा भाग्य और भगवान अर्थात् ईश्वर को मारकर मानव मुक्ति के सन्दर्भ में अभिव्यक्त होती है | सन् 1975 में दलित चेतना की मजबूत साहित्यिक धारा दिखती है | क्योंकि "एक पृथक धरा के रूप में हिंदी दलित साहित्य इसी युग में अस्तित्व में आया बल्कि उसे परिभाषित भी इसी काल में किया गया | यह धारा समग्र रूप से अम्बेडकर दर्शन से विकशित हुई, और यह दर्शन ही उसका मूलआधार है | अम्बेडकर दर्शन में दलित मुक्ति की अवधारणा की अभिव्यंजना ही वर्तमान हिंदी दलित साहित्यकी प्रतिबद्धता है | इसने नये सौन्दर्य शास्त्र को गढ़ा, जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांत पर आधारित है,इसी नये सौन्दर्य शास्त्र से हिंदी साहित्य का मूल्यांकन किया |"[16]

दलित साहित्य की हिंदी साहित्य में पहली दस्तक कविता के माध्यम से होती है | लेकिन दलित साहित्य की चेतना, अस्मिता और वैचारिकी को पहली अभिव्यक्ति उपन्यासों और आत्मकथों से मानी जाती है |कंवल भारती का मानना है —"हिंदी में पहला दलित उपन्यास डी. पी. वरुण द्वारा लिखित "अमर ज्योति" को माना जा सकता है, जो 1982 ई.में प्रकाशित हुआ था |" [17] 1987 ई. में 'युद्धरत आम आदमी' पत्रिका में दलित चेतना और अस्मिता संपन्न दलित साहित्य की पहली कहानी- 'लटकी हुई शर्त'-प्रहलाद चंद दास की छपती है | इसके बाद 1995 ई. में "जय प्रकाश कर्दम ने हिन्दी दलित साहित्य को 'छप्पर' नाम से पहला उपन्यास दिया |" [18] साथ ही प्रेम कपाड़िया ने 1995 ई. में 'माटी की सौगंध' उपन्यास लिखा | "ये दोनों उपन्यास गाँव की पृष्ठभूमि के हैं और दोनों में ही दलित चेतना का रूपांतरण आक्रोश में हुआ है |"[19]

इसीके साथ दलित समाज के दुःख, दर्द, पीड़ा, प्रताड़ना, शोषण, दमन, दलित चेतना और अस्मिता के साथ, हिंदी दलित साहित्य की पहली आत्मकथा 1995 ई. में 'अपने-अपने पिजरें' आती है | जिसके लेखक मोहनदास नैमिशराय हैं | इसके बाद दलित समाज के आक्रोश और दलित चेतना, अस्मिता को 1997 ई. में ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी आत्मकथा 'जूठन' में अभिव्यक्त करते हैं | डी. आर. जाटव

की आत्मकथा 'मेरा सफ़र मेरी मंजिल' 2000 ई. में आती है | 2002 ई. में सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत' और 2002 ई. में ही माताप्रसाद गुप्त की आत्मकथा 'झोपड़ी से राजभवन तक' आती है | 2006 में सीताराम जाटव की आत्मकथा 'मेरा गाँव और जीवन यात्रा', उसके बाद 2008 ई. में प्रोफेसर श्याम लाल की आत्मकथा ' Untold story of A Bhangi' आती है जिसका हिंदी तर्जुमां 'एक भंगी की अनकही कहानी' के रूप में छपा | 2009 ई. में प्रोफेसर श्यौराज सिंह 'बेचैन' की आत्मकथा 'मेंरा बचपन मेर कंधों पर' और 2009 ई.में ही रूपनारायण सोनकर की आत्मकथा 'नागफनी' आती है | 2010 ई. में प्रोफेसर तुलसी राम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' आती है जो दलित समाज के कला और सांस्कृतिक विमर्श पर चिंतन करती है | 2011 ई. डॉ. धर्मवीर की विवरणात्मक आत्मकथा 'मेरी पत्नी और भेड़िया' आती है, और 2011 ई. में सुशीला टाकभैरो की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द', कौसल्या वैसंती की आत्मकथा 'दोहर अभिशाप' आदि आत्मकथाएँ आती हैं |[20]

ये आत्मकथाएँ ही दलित साहित्य की जमीन हैं | शरणकुमार लिंबाले दलित आत्मकथा की अनुभूति अभिव्यक्ति पर लिखतें हैं —"आत्मकथा का अर्थ जो जिया है, भोग है और देखा है, इतने तक ही सीमित नहीं है; अपितु जो जीवन यादों में समाया हुआ है, वही आत्मकथा है | ये यादें सच्ची घटनाओं से जुड़ी रहती हैं | कागज पर शब्दों का रूप लेकर ये यादें प्रतिभा के पैरों से चली आती हैं |" [21] अपने समाज के दुःख, दर्द, पीड़ा, दमन, यातना, संघर्ष और स्वप्न को मानवीय मुक्ति के सन्दर्भ में दलित अस्मिता और चेतना सम्पन्नता के साथये आत्मकथाएँ अभिव्यक्त करतीं हैं | जाति और वर्णाश्रमीं मूल्यों के आधार पर किये जा रहे 'सुपर शोषण' को दर्शाती हैं | इससे मुक्ति के लिए डॉ. अम्बेडकर की वैचारिकी को आधार बनती हैं |

सन्दर्भ

1. रॉल फॉक्स—उपन्यास और लोक जीवन, पृष्ठ-147, प्रथम संस्करण-2008, अनुवादक- पुरुषोत्तम नागर, मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली
2. 'कथादेश' पत्रिका-दलित प्रश्न—'प्रो. तुलसीराम : भारतीय समाज के उत्खननकर्ता'—साक्षात्कार–मुद्राराक्षस, पृष्ठ-34, जून 2009
3. शरणकुमार लिंबाले—'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र', अनुवादक-रमणिका गुप्ता, 'दलित चेतना की उर्ध्वमुखी—यात्रा'—लेखिका—रमणिका गुप्ता,पृष्ठ- 10, प्रथम संस्करण- 2000, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
4. वही, पृष्ठ-127
5. वही, पृष्ठ-127
6. युद्धरत आमआदमी-पत्रिका-संपादिका-रमणिका गुप्ता,अंक- 47,जयंत परमार :दलितकविता,पृष्ठ-28,जुलाई-सितम्बर-1999.

7. शरणकुमार लिंबाले—'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र', अनुवादक-रमणिका गुप्ता, पृष्ठ- 52, प्रथम संस्करण-2000, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
8. अभय दुबे- सम्पादित-'आधुनिकता के आईने में दलित'- लेख-आस्मिताओं का सह-अस्तित्व/हिन्दू-अछूत, हरिजन या दलित —लेखक-घनश्याम शाह, पृष्ठ-208, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
9. शरणकुमार लिंबाले —(आत्मकथा)-अक्करमाशी, पृष्ठ- 15, प्रथम संस्करण- 2009, अनुवादक-सूर्यनारायण रणसुभे, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
10. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स—कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र, भूमिका, प्रकाशन वर्ष:1848,प्रथम ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन संस्करण : 2000,हिंदी अनुवाद-रमेश सिन्हा, दिल्ली
11. अभय कुमार दुबे- सम्पादित-'आधुनिकता के आईने में दलित'- लेख-अस्मिताओं का सह-अस्तित्व/हिन्दू-अछूत, हरिजनया दलित —लेखक-घनश्याम शाह, पृष्ठ- 209, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
12. शरणकुमार लिंबाले —'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र', अनुवादक-रमणिका गुप्ता, पृष्ठ- 19, प्रथम संस्करण-2000, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
13. वही,पृष्ठ-20
14. वही,पृष्ठ-21
15. वही,पृष्ठ-21,
16. कंवल भारती —'दलित साहित्य की अवधारणा', पृष्ठ- 54, प्रथम-संस्करण-जनवरी 2006, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उत्तर प्रदेश
17. वही,पृष्ठ-55
18. शरणकुमार लिंबाले —'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र', अनुवादक-रमणिका गुप्ता, 'दलित चेतना की उर्ध्वमुखी —यात्रा'—लेखिका—रमणिका गुप्ता,पृष्ठ-23, प्रथम संस्करण-2000, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
19. कंवल भारती—'दलित साहित्य की अवधारणा', पृष्ठ- 55-56, प्रथम-संस्करण-जनवरी 2006, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उत्तर प्रदेश
20. मोहनदास नैमिशराय—'हिंदी दलित साहित्य', पृष्ठ- 354, प्रथम संस्करण : 2011, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
21. शरणकुमार लिंबाले—'अक्करमाशी', पृष्ठ-14-15, संस्करण-2009, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली